प्राथमिक विद्यालयों में छात्र-अध्यापक अनुपात

*भगवतशरण बुड़ाकोटी**

शिक्षा की प्रक्रिया में विद्यार्थी की केंद्रीय भूमिका है इसमें कोई संदेह नहीं। इस प्रक्रिया में शिक्षक का स्थान भी उतना ही महत्वपूर्ण है। प्रत्येक विद्यालय में कम से कम कितने शिक्षक हों? एक शिक्षक कितने विद्यार्थियों को पढ़ाए? यह गम्भीर चिंतन व मनन का विषय है। हमारे प्राथमिक विद्यालयों में वास्तविक परिस्थितियाँ क्या बताती हैं और प्राथमिक स्तर पर अध्यापक सख्यां क्या हो ताकि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया सुचारू रूप से चल सके, इन्हीं मुद्दों पर अपने विचार प्रकट किए है उक्त शिक्षक ने इस लेख में।

जहाँ कहीं शिक्षा की चर्चा होती है तो सैद्धांतिक रूप से तीन बिंदुओं की बात की जाती है-शिक्षा, शिक्षक और शिक्षार्थी। इस सिद्धांत के अनुसार शिक्षा ग्रहण करने वालों के लिए शिक्षा जितनी महत्वपूर्ण है उतना ही महत्वपूर्ण शिक्षा प्रदान करने वाला अर्थात् शिक्षक भी। यह तो रहा सैद्धांतिक सत्य किंतु प्रश्न यह है कि विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या कितनी हो? इस विषय पर गंभीर चिंतन, मनन एवं मंथन की आवश्यकता है। समय-समय पर इसके नाम पर भारी भरकम धनराशि व्यय करके गोष्ठियाँ आयोजित की जाती हैं और उनके प्रचार-प्रसार में भी अपार धनराशि व्यय की जाती है। किंतु अभी तक कोई तर्कसंगत नीति निर्धारित नहीं हो पायी है।

प्राय: तीन तरह की बातें देखने-सुनने को मिलती हैं। प्रथम कि अध्यापकों की संख्या कक्षाओं की संख्या के अनुरूप होनी चाहिए, द्वितीय कि प्रति चालीस छात्रों पर एक अध्यापक और तृतीय कि प्रति पच्चीस छात्रों पर एक अध्यापक नियुक्त होना चाहिए। सैद्धांतिक रूप से ही इस मामले में सार्वभौमिकता का नितांत अभाव है। व्यवहारिक रूप में तो स्थिति नितांत शोचनीय व दयनीय है। नीति निर्धारण में साम्य का बिलकुल ही लोप हुआ प्रतीत होता है।

कई विद्यालय में मात्र आठ या दस की छात्र संख्या पर चार-चार अध्यापक कार्यरत हैं तो

*सहायक अध्यापक, ग्राम चरगाड, पो. श्री कोट (वाया पोखड़ा), पौड़ी गढ़वाल 246169

अधिकांश विद्यालयों में छात्रों की संख्या शताधिक होने पर भी एकमात्र अध्यापक नियुक्त है। विषम भौगोलिक स्थिति वाले विद्यालयों में तो किसी अध्यापक महोदय का पूरे समय तक टिक पाना अवतार की श्रेणी प्राप्त करने जैसा है। सुविधाजनक स्थानों वाले विद्यालयों में अध्यापक का अतिक्ति 'जमावड़ा मरुस्थल्यां यथा वृष्टि की उक्ति के नितांत विपरीत है। दूरस्थ स्थानों के विद्यालयों में बड़ी मुश्किल से प्रथम नियुक्ति या पदोन्नति के फलस्वरूप किसी अध्यापक के आ जाने की खुशी मात्र कार्यभार ग्रहण की तिथि तक ही सीमित रहती है। कार्यभार ग्रहण करने के उपरांत व्यवस्थापूर्वक पुनः आने की बात कहकर जब अध्यापक महोदय जाते हैं तो बाद में उनके किसी ऐसे सुविधाजनक विद्यालय में स्थानांतरण की सूचना मिलती है जहाँ पहले ही मानकों से अधिक अध्यापक कार्यरत हैं। साथ ही यह भी विदित होता है कि उक्त अध्यापक का वेतन कार्यरत विद्यालय से नहीं वरन् नियुक्ति वाले विद्यालय के नाम से आहरित हो रहा है। इससे अभावग्रस्त विद्यालय में नयी नियुक्ति का मार्ग भी अवरुद्ध होता है। इस प्रकार एक विद्यालय के अध्यापकों का अतिरिक्त जमावड़ा और दूसरे विद्यालय का कृत्रिम अभाव उत्पन्न हो जाता है। इस अतिरिक्त जमावड़े एवं कृत्रिम अभाव से तो शासन एवं अध्यापकों की नैतिकता ही लड़ सकती है। अन्यथा यह रोग लाइलाज हो चुका है। एक ही विद्यालय हेतु कई अध्यापकों के स्थानान्तरण प्रार्थना पत्रों पर संस्तुति देना शायद जनप्रतिनिधियों की मज़बूरी में शामिल हो चुका है। मूल बात कि अध्यापकों की संख्या कितनी हो, इस चिंतन पर निर्भर करती है कि एक अध्यापक एक दिन में कितना समय बच्चों को दे सकता है और बच्चा कितने समय तक झेल सकता है? एक प्रकरण विशेष को मात्र एक ही विधि से आत्मसात् कराया जाना असम्भव एवं अव्यवहारिक है। इसके लिए संबंधित प्रकरण अलग-अलग विधियों से प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है। विधियों में परिवर्तन जहाँ छात्र को आनन्दित करता है वहीं प्रकरण को सूक्ष्मता से आत्मसात् करने में भी सहायक सिद्ध होता है। किन्तु एकल अध्यापकीय व्यवस्था वाले विद्यालयों में यह बात कैसे लागू हो सकती है? क्योंकि अध्यापक महोदय को यह भी याद रखना है कि चार अन्य कक्षाएं भी उनका इंतजार कर रहीं हैं। सभी कक्षाओं को एक साथ बैठाकर पढ़ाया जाना भी व्यवहारिक नहीं है। क्योंकि पाँचों कक्षाओं में अध्ययनरत शिक्षार्थी स्वाभाविक रूप से अलग-अलग शारीरिक एवं मानसिक योग्यता वाले हैं। तृतीयतः अन्य विभागीय एवं राष्ट्रीय कार्यों के संपादन हेतु भी समय की आवश्यकता है।

वस्तुतः अध्यापकों की संख्या छात्रों की संख्या पर नहीं वरन् कक्षाओं अथवा विषयों के अनुरूप होनी चाहिए। वर्तमान में प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक दोनों ही प्रकार के विद्यालयों में विषयों की संख्या समान है किंतु उच्च प्राथमिक विद्यालयों में जहाँ कम से कम तीन और अधिक से अधिक पांच शिक्षकों का मानक है प्राथमिक विद्यालयों में कहीं दो और कहीं एकमात्र अध्यापक ही कार्यरत है। ऐसी स्थिति में शिक्षण कार्य कितना प्रभावी हो सकता है इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। भय का वातावरण उत्पन्न करके बच्चों को कुछ मूलभूत बातें

रटायी तो जा सकती हैं किंतु यह तो बच्चों के विकास के बजाय विनाश का ही कार्य अधिक करेगा।

शासन के पास कक्षाओं या विषयों के अनुरूप अध्यापकों की नियुक्ति न कर सकने के पक्ष मे इसके व्यवसाध्य होने का तर्क तो मौजूद है किंतु दूसरी ओर छोटे से छोटे गांव में जहाँ की आबादी अत्यंत न्यून है प्राथमिक विद्यालयों का खुलना आवश्यकता-सी हो गयी है। यद्यपि उत्तराखंड सरीखे पहाड़ी राज्य की विषम भौगोलिक परिस्थिति में प्राथमिक विद्यालयी स्तर के बच्चे का दूर जा पाना सम्भव नहीं है किंतु चार-पाँच निकटवर्त्ती गाँवों के मध्य में एक प्राथमिक विद्यालय स्थापित कर पर्याप्त संख्या में अध्यापकों की व्यवस्था की जा सकती है। अदूरदर्शिता के कारण खोले गए ऐसे विद्यालय पर्याप्त छात्र संख्या न जुटा पाने के कारण आज बन्द होने की कगार पर हैं। विगत दिनों दस से कम संख्या वाले विद्यालयों को बन्द करने संबंधी बात अभी तक भी अमल में नहीं आ पायी है। इन विद्यालयों का अस्तित्व बरकरार रखने हेतु एक ओर जहाँ फर्जी छात्र संख्या का सहारा लिया जा रहा है वहीं दूसरी ओर राजनीति का सहारा लेकर विद्यालयों को टूटने से बचाए जाने के प्रयास किए जा रहे हैं कई गाँवों में जातीय समीकरण इतने प्रबल हैं कि एक ही गाँव में दो विद्यालय दो जातियों के नाम पर आधारित खोले गए हैं। भले ही दोनों को अलग-अलग नाम दिये गए हैं किंतु स्थानीय लोगों की जुबान पर जातिसूचक नाम ही प्रचलित है। विद्या के जिस मंदिर की नींव इतने घृणित और तुच्छ विचार पर आधारित हो, उस मंदिर में कैसे देवता निवास करते होंगे और वहाँ किस प्रकार की पूजा होती होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इस भावना ने प्रत्यक्ष रूप से अध्यापकों की संख्या को अवश्य ही प्रभावित किया है। दो विद्यालयों की स्थापना की मांग के बजाय एक ही विद्यालय में वांछित अध्यापक संख्या की मांग की जा सकती थी। जिससे शिक्षण कार्य सुव्यवस्थित रूप से चल सकता था। विषम भौगोलिक परिस्थिति के कारण एकाधिक ग्रामों को एक ग्रामसभा के अंतर्गत शामिल किया जाना मज़बूरी है। इस प्रकार की ग्रामसभाओं में विद्यालयों की स्थापना हेतु स्थान चयन सबके लिए समान समीपता के सिद्धांत को ध्यान में रखकर नहीं बल्कि अधिसंख्यक लोगों की बात के सिद्धांत पर किया जाता है। जिसमें अधिक जनसंख्या वाले गांव बाजी मार लेते हैं क्योंकि लोकतंत्र की राजनीति संख्या बल पर आधारित है। यह बात कम जनसंख्या वाले ग्रामवासियों को अपनी प्रतिष्ठा पर चोट स्वरूप महसूस होती है और यहीं से उत्पन्न होती है एक नये विद्यालय की स्थापना की मांग। वोट बैंक के इस युग में इस मांग का पूर्ण हो जाना असम्भव भी नहीं है।

स्पष्ट है कि विद्यालयों मे तब तक शिक्षण कार्य भली भांति सम्पन्न नहीं हो सकता जब तक कि वहां वांछित संख्या में अध्यापकों की व्यवस्था न की जाए। इसके लिए जनता तथा शासन दोनों को ही क्षुद्र विचारों से ऊपर उठकर मन से शिक्षा के लिए समर्पित होना आवश्यक है। विद्यालयों की स्थापना ऐसे केंद्रीय स्थलों पर की जाय जहाँ अधिसंख्यक छात्र पंहुच सकें, साथ ही संसाधनों व अध्यापकों की संख्या भी पर्याप्त हो।